INTERNATIONAL EDUCATIONAL APPLIED RESEARCH JOURNAL (IEARJ)
Volume 03, Issue 07, July 2019
E-ISSN: 2456-6713

SAMKALEEN KAVITA ME VAISHVIKARAN AUR BAZARWAD KE KHATARON KI CHINTA

समकालीन कविता में वैश्वीकरण और बाजारवाद के खतरों की चिंता

Dr. Gopiram Sharma
Assistant Professor, Post Graduate Hindi Department, Dr. Bhimrao Ambedkar Government College, Sri Ganga nagar, Rajasthan, India.

वैश्वीकरण की अवधारणा पिछली शताब्दी के अन्तिम दशक में सामने आई। सन् 1990 के आस–पास आई इस विचारधारा ने तुरन्त ही पूरी दुनिया को अपने प्रभाव में ले लिया। वैश्वीकरण का प्रभाव राजनीति, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थाओं पर पड़ा। जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं बचा जो इसके प्रभावों से अछूता रहा। वैश्वीकरण के बीज अंग्रेजों की उपनिवेशवादी नीति में दिखाई पड़ते हैं। हमारे देश को भूमंडलीकरण का सामना सन् 1857 से ही करना पड़ा। आजादी के बाद सन् 1991 तक इसकी गति धीमी रही परन्तु सोवियत रशिया के पतन के बाद इसकी गति तेज हो गई। आर्थिक उदारीकरण की नीति के परिणाम स्वरूप वैश्वीकरण को बल मिला। उपनिवेशवाद का दूसरा नाम ही वैश्वीकरण है, जिसके पीछे आर्थिक लाभ उठाने की सोची समझी राजनीति है। वैश्वीकरण से आज केवल समाज व्यवस्था ही नहीं, बल्कि मनुष्य जाति सबसे अधिक प्रभावित है।

वैश्वीकरण के समर्थक इसके कई लाभ गिनाते हैं। यह विश्व को एक सूत्र में बांधना चाहता है। इसी कारण प्रत्येक विषय और विचारों को लेकर एक नया दृष्टिकोण सामने आया है। वैश्वीकरण के कारण कम्प्यूटर, ई–मेल, इन्टरनेट आदि के माध्यम से सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति आई। विभिन्न संस्कृतियों का आदान–प्रदान बढ़ने लगा। पूरा विश्व एक ग्राम में तब्दील हो गया। दुनिया के शक्तिशाली देश अमेरिका, इग्लैंड आदि का विचार है कि पूरी दुनिया में कहीं प्राकृतिक संसाधन भरपूर है, कहीं का श्रम सस्ता है। इसलिए बाजार में सस्ता माल तैयार कर दुनिया को लाभान्वित किया जा सके। बाजार से जो लाभ कमाया जाएगा उसे गरीब देशों की अन्नति के लिए लगाया जाएगा। पूरी दुनिया के संसाधनों पर पूरी दुनिया का अधिकार हो।

वैश्वीकरण के सम्बन्ध में यह माना जाता है कि यह अमेरिका उस नीति का हिस्सा है जिसके अन्तर्गत वह दुनिया व अन्य देशों के संसाधनों पर वैश्वीकरण के बहाने से अपने हित के लिए उपयोग करना चाहता है। सुधारवाद का मुहावरा केवल अपने कर्मों पर पर्दा डालने के लिए गढ़ा गया है। वैश्वीकरण एवं सुधारवाद का नारा देकर अमेरिका विश्व को अपने नियंत्रण में रखना चाहता है। गरीब देशों को गुमराह किया जा रहा है। धीरे–धीरे उनके श्रम साधनों एवं कच्चे माल पर कब्जा करने का प्रयास किया जा रहा है। ''जी–सेवन से जुड़े सात देश– ब्रिटेन, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान तथा यूनाइटेड स्टेट्स एक सी भाषा भूमंडलीकरण को लेकर बोल रहे हैं। इन सभी पर व्यापारवाद का उन्माद छाया हुआ है, उन्हें तीसरी दुनिया के देशों के हितों की चिंता नहीं है।''[1] इन देशों को अपना तैयार माल खपाने के लिए बाजार चाहिए। आर्थिक उदारीकरण के कारण दुनिया बाजार के रूप में दिख रही है। व्यापारवाद एवं बाजारवाद के उद्देश्य वैश्वीकरण एक नये तरह का उपनिवेशवाद है। ''उपनिवेश समाप्त होने के बाद पूंजीवादी देशों के लिए यह संभव हो गया कि वे दूसरे देशों में जाकर अपने उपनिवेश कायम किये बिना ही अपने साम्रज्य का विस्तार कर सकें। इस अवस्था का नाम ही भूमंडलीकरण है।''[2]

वैश्वीकरण को लेकर चाहे जो मान्यताएँ हो, पर इसने दुनिया को छोटा करके रख दिया। आर्थिक उदारीकरण के कारण बाजार और बाजारवाद को बल मिला। बाजार ने चीजों, दर्शन, सिद्धान्त, साहित्य और भाषा आदि को नये दृष्टिकोण से पहचाना है। दुनिया में बाजार सदा से रहा है। बाजार की उपादेयता है आवश्यकता के समय काम आना। पर जब बाजार के साथ 'वाद' प्रत्यय जुड़ता है तो यह दार्शनिक संज्ञा किसी सिद्धान्त को जन्म देती है। वैश्वीकरण की कोख से जन्मे इस सिद्धान्त ने पूरी दुनिया को 'बड़े बाजार'में बदल डाला। धर्म, अर्थ, काम, संस्कृति, दर्शन सभी वैश्वीकरण एवं बाजारवाद से प्रभावित होने लगे। आज हर व्यक्ति और वस्तु को अपनी उपादेयता सिद्ध करनी है। उसका आर्थिक दृष्टि से महत्वशाली होना आवश्यक है, क्यों कि जो बिक नहीं सकता, वह चल नहीं सकता। अतः आवश्यक है कि आप अपने में वह खूबी पैदा करे जो आपको बिकाऊ बना सके। यही वैश्वीकरण का खतरा है कि बाजार हर वस्तु सिद्धान्त को पण्य बनाता हुआ हमारे मन और चेतना पर छा रहा है।

सन् 1960 के बाद की कविता को समकालीन कविता कहा जाता है। यह समय जनता के उन सपनों के मोहभंग का है जो उसे आजादी के बाद दिखाए थे। यह काल उद्योगीकरण व नगरीकरण का है। उद्योगों के पनपने के साथ उसके दुष्प्रभावों ने समाज को घेरना शुरू किया। इनसे न केवल शहरों में गन्दी बस्तियां और नारकीय जीवन पनपा, बल्कि मंहगाई–बेरोजगारी ने आम आदमी के जीवन को कष्टमय बना दिया। व्यवस्था ने उसके जीवन को कुंठा, विवशता, हताशा, प्रताड़ना, दयनीयता से भर दिया। शहरों की ओर पलायन बढ़ा। संस्कृति, मूल्य टूटने लगे। इस दशा को समकालीन कवि ने कविता में चित्रित किया। रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, कुंवरनारायण, लक्ष्मीकांत वर्मा तथा श्रीकांत वर्मा ने अगुवाई की और अब धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, चन्द्रकांत देवताले, वेणु गोपाल, सोमदत, बलदेव बंशी, प्रयाग शुक्ल, सौमित्र मोहन, मलयज, नीलाभ, देवेन्द्र कुमार, राजेश जोशी, उदय प्रकाश, मंगलेश डबराल, मनोज सोनकर, असद जैदी, विष्णु खरे आदि उसे दिशा दे रहे हैं। ''आज की कविता अलग से कोई आन्दोलन नहीं है, बल्कि वह देश में विभिन्न स्तरों पर जारी शोषण, अत्याचार, बर्बरता और जन साधारण के विरूद्ध किए जा रहे षड़यंत्रों के प्रतिरोध में जारी एक व्यापक आन्दोलन का हिस्सा है। ''[3]

आधुनिकता के फलस्वरूप पनपे देशीय उद्योगीकरण एवं नगरीकरण को अन्तर्राष्ट्रीय वैश्वीकरण ने पकड़ लिया। क्षेत्रीय बाजार अब विश्व बाजार में तब्दील हुआ। बाजार वाद ने सामाजिक व्यवस्था, सिद्धान्त, मूल्य, दर्शन आदि को विकृत कर दिया। समकालीन कवि ने इस खतरे को भांप कर वैश्वीकरण के प्रति लोगों को चेताना शुरू कर दिया। आज की कविता में बाजार का यह प्रतिरोध देखने को मिल जाता है–

''विक्षिप्त विजयोल्लास में ढिंढोरचियों का महादल गा रहा है/हर चीज का अंत करता सदी का अंत आ रहा है/चूहा चीते से पंजा लड़ा रहा है/ऐसा होता तो नहीं पर हो रहा है/देश अपनी अस्मिता खो रहा है।''[4]

बाजार का आकर्षण व्यक्ति को मानसिक गुलाम बना रहा है। जब ऐसा दृश्य सामने आता है वो डर लगने लगता है। हम जरूरत के बिना बाजार की चमक दमक में फंस जाए तो वह असंतोष, तृष्णा और ईर्ष्या से घायल कर हमें बेकार बना सकता है। समकालीन कवि इसी बेहया बाजार के प्रभावों को अपनी कविता में व्यक्त कर रहा है–

कलम छोड़ दो मेज पर, कागज रख दो द्वार।

सारी दुनिया जा रही, कवि जी चलो बाजार।''[5]

बाजार का आकर्षण सिर बढ़कर बोलता है। सभी बाजार की ओर उन्मुख है। बाजार भले ही छद्म रूप से लूटता है पर इससे किसी को परवाह नहीं। व्यक्ति बाजार से खुश है। बाजार के लिए आदमी को नरक जाने से भी परहेज नहीं–

''स्वर्ग में बाजार नहीं है/भूमंडलीकरण नहीं है/नहीं है मैंने कहा न स्वर्ग में कुछ नहीं है/मैं नरक जा सकता हूँ/वहाँ उम्मीद तो रहती है/कि कुछ हो सकता है।''[6]

बाजार की सजावट, रंग, उत्पाद और विज्ञापन ऐसे तैयार किए जाते है जो व्यक्ति को अपनी ओर खींच सके। ऐसा सम्मोहन पैदा होता है कि हम तय ही नहीं कर पाते कि बाजार के बारे में हम सोच रहे हैं या बाजार हमें सोचने के लिए विवश कर रहा है। वैश्वीकरण के प्रभाव से आज आदमी भी एक वस्तु बन गया है। इस त्रासदी को कविता उद्घाटित करती है–

''एक सुबह उठा और पाया/सारी दुनिया बन चुकी है बाजार/सब बाजार की भाषा बोल रहे हैं/केवल क्रेता–विक्रेता बचे हुए हैं/लोग मेरे साथ इस तरह का/बर्ताव कर रहे हैं जैसे/मैं कोई वस्तु हूँ।''[7]

वैश्वीकरण के फलस्वरूप आई बाजारवादी संस्कृति ने पुरूष के साथ नारी पर अधिक कुप्रभाव छोड़े हैं। बाजार अपनी विज्ञापन जरूरतों के लिए नारी को एक ब्रांड के रूप में देखता है। इसके ऊपर तुर्रा यह कि यह नारी की स्वतंत्रता–प्रगति का पथ तैयार हो रहा है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने नारी की गोपनीयता को उखाड़ कर उसकी नयी छवि बना डाली है। इस छवि से बाजार नारी से पुरूषोचित सामान का भी विज्ञापन करवा रहा है। आजादी के नाम पर नारी को बेपर्दा करता बाजार कविता में चिन्ता पैदा करता है–

''मेरी प्रजाति की नग्नता को परिधान में बदलते हुए/आये दिन एक न एक विज्ञापन लटक जाता है शहर में/उघाड़ी लड़की के हाथ पर तौलिया/पीछे अविश्वसनीय नहानघर/बगल में खड़ा है पाउडर का पुल्लिंग डिब्बा/यह दृश्य एक साथ/दो–तीन प्रकार की गालियों जैसा उत्तेजक है।''[8]

बाजार वाद का ही यह परिणाम है कि मूल्यों में विकृति आयी है। नैतिक मानदण्ड बदल रहे हैं। व्यक्ति बाजार के हाथों संचालित होकर पैसे और पद के लिए दौड़ रहा है। इस अन्तहीन दौड़ ने उसकी संवेदनाओं की शीतल सरिता को सूखा डाला है। पैसे से रिश्ते–नाते निर्धारित हो रहे हैं। यह संवेदनहीनता और मूल्यहीनता समकालीन कविता में चिंता का कारण बनती है–

''गठरी लेकर पढ़ती हुई बूढी औरत/चलती बस से गिर गई/गिरने दो/पड़ौसी का पिता खांस–खांसकर/मर गया/मरने दो/xxx/चांदनी चौक के दंगे में/उजड़ गए दो घर/उजड़ने दो/दो कुंवारी लड़कियों की लूट ली गयी अस्मत/लुटने दो/सड़क पर चवन्नी पड़ी है/वह झट से डालता है/जेब में हाथ/कहीं उसकी जेब तो नहीं फटी है।''[9]

वैश्वीकरण के कारण जो अपसंस्कृतियां या बाजारूपन दुनिया में व्याप्त है, उसके चपेट में हर देश है। आज अगर न्यूयार्क में कुछ सड़ेगा तो उसकी सड़ांध अपनी गलियों में फेलेगी। वैश्वीकरण ने देशों के बीच की दूरी मिटा दी। आप कहीं हो बाजार आप तक आ जायेगा–

''बाजार को दूर से देखने पर भी लगता है डर/मेरा घर तो बाजार के इतने पास है/कि उजड़ी हुई दुकान नजर आता है।''[10]

वैश्वीकरण और उसकी संतान बाजारवाद का खतरा हमारे सामने है। समकालीन कविता इस खतरे को बता रही है। समकालीन कवित को चिंता है कि केवल पैसे जनित मान्यताओं और संवेदनाओं से समाज का भला नहीं होने वाला। यह कविता खतरों को व्यक्त कर हमें सजग कर रही है, साथ ही हमारी प्राचीन संस्कृति एवं परम्परागत मूल्यों का वैश्वीकरण के खतरों के प्रति ढाल बनाने की वकालत करती है–

''एक दिन जरूर लौटेगी माँ/बाजारवाद और उपभोक्तावाद के रहस्यों को/परत–दर–परत खोलती हुई/ग्लोबल संस्कृति के मूल में/संस्कृति के नए बीज अंकुरित करती हुई।''[11]

समकालीन कवि बाजार एवं वैश्वीकरण के खतरों के प्रति आगाह करके समाज को बचाने में लगा है। वह बाजार एवं वैश्वीकरण का सच्चा, कटु, नग्न, यथार्थवादी रूप पाठक को दिखा रहा है। अपनी कविता से इन खतरों से टक्कर ले रहा है–

''अब यह कैसे बताऊँ/लेकिन छिपाऊँ भी तो क्यों/कविता और बाजार की हल्की सी टक्कर/रोमांचित करती है मुझे।''[12]

आज का कवि प्रकृति में हर समस्या का हल देखता है। इसके साथ वह ग्राम, मूल्य, रिश्तों, संस्कृति की बात कर फिर से मानव में संवेदना जगाने की बात करता है। वैश्वीकरण के खतरों से बचने के लिए कविता ऐसे मनुष्यों की तलाश कर रही है जो अपनी चेतना से चलायमान हो, बाजार की मर्जी से नहीं।

संदर्भ संकेत –

1. कृष्णदत पालीवाल–उत्तर आधुनिकता और दलित साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008 ई., पृष्ठ–151
2. मैनेजर पांडेय–भाषा और भूमंडलीकरण, शब्द संधान, दिल्ली, 2008 ई. पृष्ठ–09
3. 3. मृदल जोशी–समकालीन हिन्दी कविता में आम आदमी, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2001 ई., पृष्ठ–07
4. राजेश जोशी–दो पंक्तियों के बीच, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004 ई. पृष्ठ–52
5. केदार नाथ सिंह–तालस्ताय और साइकिल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005 ई.
6. विष्णु नागर–स्वर्ग में कुछ नहीं, वाक्–2, पृष्ठ–180
7. स्वप्निल श्रीवास्तव–पल प्रतिपल, अंक–42, पृष्ठ–169
8. लीलाधर जगूड़ी–अनुभव के आकाश में चांद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994 ई., पृष्ठ–45
9. विनोद दास–दिल्ली, खिलाफ हवा से गुजरते हुए, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1986 ई., पृष्ठ–56
10. हेमन्त कुकरेती, आँख, चाँद पर नाव, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2003 ई.
11. राधेलाल विजयधावने–जरूर लौटेगी माँ (कविता)
12. केदारनाथ सिंह–तालस्ताय और साइकिल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005 ई.